

ResearchPro International Multidisciplinary Journal



Vol- 1, Issue- 2, October-December 2025
Email id: editor@researchprojournal.com

ISSN (O)- 3107-9679
Website- www.researchprojournal.com

भारतीय ज्ञान परम्परा और योग: ऋजुयोग के विशेष सन्दर्भ में

डॉ० प्रमिता मिश्रा

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, पी.जी.डी.ए.वी. महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सार—

भारतीय ज्ञान परम्परा मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का समृद्ध और प्राचीन आधार प्रस्तुत करती है। यह परम्परा वेद, उपनिषद, दर्शन, योग और आध्यात्मिक चिंतन के माध्यम से व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच समन्वय स्थापित करती है। योग इस ज्ञान परम्परा का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसका उद्देश्य शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक संतुलन की प्राप्ति है। प्रस्तुत अध्ययन में भारतीय ज्ञान परम्परा की पृष्ठभूमि में योग की अवधारणा का विश्लेषण किया गया है तथा विशेष रूप से ऋजुयोग के सिद्धांतों और व्यावहारिक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है।

ऋजुयोग सरलता, सहजता और नैतिक जीवन मूल्यों पर आधारित योग पद्धति है, जो आधुनिक जीवन की जटिलताओं के बीच व्यक्ति को आत्मानुशासन, मानसिक शांति और सकारात्मक जीवन दृष्टि प्रदान करती है। यह योग न केवल आत्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है, बल्कि सामाजिक और नैतिक चेतना के विकास में भी सहायक है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि ऋजुयोग भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल तत्वों को आधुनिक संदर्भ में किस प्रकार प्रभावी रूप से प्रस्तुत करता है।

कुंजी शब्द— भारतीय ज्ञान परम्परा, योग, ऋजुयोग, आध्यात्मिक चेतना, नैतिक मूल्य, आत्मविकास, जीवन दर्शन।

योग विषय अत्यन्त गूढ़, दुरुह तथा व्यापक होने से योग शब्दाभिप्रेत सभी तत्वों का परिचय संक्षेप में नहीं दिया जा सकता। आजकल योग शब्द इतना व्यापक हो गया है कि उसके वाच्यार्थ की नियत प्रतीति का पता ही नहीं चलता। फिर भी साधारणतया श्योगश् का अर्थ किसी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिये श्रान्तःकरणपूर्वक तत्पर होना मान लें तो अनुचित न होगा। कारण, योगान्तर्गत जितनी भी क्रियाएं हैं, वे सब किसी अभीष्ट प्राप्ति या मिलन के लिये ही की जाती हैं; वे चाहे किसी भी रूप में क्यों न हों। लोक में भी किसी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति को श्योगश् और अलग होने को श्वियोगश् कहते हैं। किसी वस्तु के साथ अन्य पदार्थ के सहकार को भी योग कहा जाता है।

मेरे विचार में संसार में आसक्त हुआ मन जिसके द्वारा परमात्मा के साथ जोड़ा जाए उसी का नाम योग है। अतः प्रभु-प्राप्ति के जितने साधन हैं, सभी योग कहे जा सकते हैं। राजयोग, हठयोग, सुरतिशब्दयोग, कर्मयोग, क्रियायोग, सांख्ययोग आदि अनेकों योग हैं। जो जिस योग का अधिकारी होता है, उसके लिये वही योग उपयुक्त भी होता है। एक भक्तियोग ही ऐसा है जिसमें सबके लिये स्थान है। भक्तियोग या भक्तिमार्ग में किसी के लिये मनाही नहीं, वह राजपथ समान है। एक अन्धा व्यक्ति भी आँखें बन्द करके सहज ही चला जा सकता है, किन्तु उसके लिये भी एक योग्यता की आवश्यकता है—

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना । विनानन्दाश्रुकलया..

अर्थात् जिसका हृदय स्वाभाविक ही सरल न हो, जिसे भगवत्-गुण-श्रवण-स्मरण से रोमाञ्च न होता हो, भगवत् दर्शन से जिसके नेत्रों से आनन्दाश्रु न बहते हों, वह भक्ति का यथार्थ अधिकारी नहीं। इसीलिये भक्ति के दो भेद हैं— स्वाभाविकी और वैधी। जैसे प्यासा बिना पानी के रह ही नहीं सकता, जैसे अग्नि को देखकर स्वाभाविक ही मनुष्य उससे दूर भागता है, ऐसे ही विषयों से स्वाभाविक विराग होकर प्रभुप्राप्ति की स्वाभाविक इच्छा होना स्वाभाविकी भक्ति है। और शास्त्रों में भक्ति का माहात्म्य सुनकर भक्ति करना यह वैधी भक्ति है। किन्तु हमारी इन झूठी आँखों में न तो कभी आनन्दाश्रु ही आते हैं, न यह वज्र—जैसा हृदय ही पसीजता है, फिर हम जैसे मूढमति-पुरुषों के लिये भी कोई मार्ग है क्या? शास्त्रकारों ने हम—जैसे अल्पज्ञ पुरुषों के लिये भी उपाय बताये हैं। भक्तिमार्ग बड़ा विशद है। उसके श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन, पादसेवन, सख्य, दास्य, अर्चन और आत्मनिवेदन ये नौ अङ्ग हैं। दास्य, सख्य, वात्सल्य, शान्त और मधुर—ये पाँच भाव हैं। और भी अनेकों अनुभाव—विभावों से भक्तिमार्ग सुविस्तृत है। इसी भक्ति—सागर को मथकर इसका अल्पीभाव बनाकर हम सर्वसाधारण लोगों के लिये मनीषियों ने ऋजु—योग—जैसे मार्ग बताये हैं। ऋजु—योग भक्तियोग के ही अन्तर्गत है। इसमें मृदुता और सरलता ही एक आवश्यक वस्तु है। हमारे जीवन में पग—पग पर कृत्रिमता (बनावट) है। यह कृत्रिमता (बनावट) किसी तरह से मिट जाए तो हमारे प्रभु अपने आप ही हमें हृदय से लगा लें। छोटा निष्कपट सरल शिशु कभी किसी से यह नहीं कहता कि तुम मुझसे प्यार करो। किन्तु उसकी सरलता, मृदुता और निष्कपट चेष्टा को देखकर चित्त बिना प्यार किये रह ही नहीं पाता। यदि इसी तरह हमारे जीवन में से यह सांसारिक प्रपञ्च, छल—कपट निकल जाए तो भगवान हमसे प्रेम करने को विवश हो जाएंगे। छल—कपट ही उन्हें अच्छा नहीं लगता—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।

किन्तु छल—कपट जीवन से जाए कैसे? वह ऋजु—योग के ही द्वारा सुगमता और सरलता से जा सकता है। ऋजु—योग की नींव श्रद्धा के ऊपर है। पूरी न हो, स्वाभाविकी न हो, थोड़ी ही सही, सुनकर ही सही, हठपूर्वक ही हो, शास्त्रवाक्यों में और गुरुवाक्यों में श्रद्धा होनी चाहिये। थोड़ी भी श्रद्धा होने से इस मार्ग में आने पर धीरे—धीरे श्रद्धा स्वतः ही बढ़ जाती है। जो वेद, शास्त्र और गुरुवाक्यों की निन्दा करता है, उन्हें ढोंग समझता है वह तो इधर आएगा ही नहीं। यदि अणुमात्र श्रद्धा से या वैसे ही शुरू कर देने पर जो एक बार बढ़ता है, वह तो बढ़ता ही जाता है—

‘स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।’

ऋजु—योग के चार अङ्ग हैं— सत्सङ्ग, भगवत्कथा—श्रवण, कीर्तन और जप। इन चारों के ही द्वारा मनुष्य परमपद तक पहुँच सकता है। इन्हीं का नाम ऋजु—योग है, इसमें सभी श्रेणी के स्त्री—पुरुषों का अधिकार है। सभी इस सरल, सुगम, संक्षिप्त मार्ग से अपने गंतव्य मार्ग तक पहुँच सकते हैं। यहाँ संक्षेप में इन चारों पर विचार किया गया है—

१. सत्सङ्ग— ऋजु—योग का सर्वप्रथम सोपान है सत्सङ्ग। भगवान् कपिल ने अपनी माता देवहुति को ऋजु—योग का उपदेश देते हुए आरम्भ में ही कहा है—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो, भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।

तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि, श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ।

अर्थात् अन्तःकरण को और बाह्य करणों को आनन्दित करने वाली सुन्दर कथाएँ साधु पुरुषों के सत्सङ्ग में ही सुनने को मिल सकती हैं। उन कथाओं के श्रवण से अति शीघ्र ही परमार्थस्वरूप प्रभु की प्राप्ति के विषय में सर्वप्रथम श्रद्धा होती है, श्रद्धा होने पर रति होती है और रति होने पर भक्ति प्राप्त होती है। सत्सङ्ग के बिना इस मार्ग में गति सम्भव ही नहीं है। सत्सङ्गति की महिमा के तो शास्त्रों में असंख्य उदाहरण प्राप्त होते हैं, किन्तु विचारणीय यह है कि हम जैसे मन्दमति व्यक्ति यह निर्णय कैसे करें कि यह साधु है अथवा असाधु। आजकल बहुत—से असाधु साधुवेश में घूमते हैं। यद्यपि शास्त्रों में तितिक्षु, करुणायुक्त, सभी प्राणियों के मित्र, निर्वैर, शान्त, निरन्तर भक्ति करनेवाले, वीतरागी, गृहत्यागी, भगवत्कथा सुनने वाले आदि बहुत—से गुण साधुओं के बताये गए हैं, किन्तु हम साधारण लोगों में इतनी बुद्धि कहाँ जो इन गुणों की परीक्षा कर सकें। इसलिये साधु की सामान्य पहचान यही कही जा सकती है कि जो हर समय भगवत्—भजन, भगवत्—कथा—श्रवण और

भगवन्नाम—जप में लगा रहता हो, जिसका कोई भी समय व्यर्थ की बातों में न जाता हो, जो अपने शरीर के सुखों की चिन्ता न करता हो, और यदि उसे कोई चिन्ता हो भी तो वह भी दूसरों के दुःखों की चिन्ता हो। ऐसे व्यक्ति को ही साधु समझना चाहिये। श्रीमद्भागवत में एक स्थान पर लिखा है—

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः । परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ।

अर्थात् समदर्शी साधु लोगों के दुःखों को देखकर दुखी होते हैं। इस अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त उस अखिलेश्वर जनतारूपी जनार्दन की सेवा करने के निमित्त दुःख सहना ही उनकी परम आराधना है। जिनकी सभी चेष्टाएं प्रेमपूर्ण हों और जिनके शारीरिक काम यदि हों भी तो वे केवल परोपकार के लिये ही हों। बस, उन्हीं को साधु समझकर उनकी सङ्गति में रहना चाहिये। साधु दूसरों की निन्दा नहीं करेगा, ना ही दूसरों के दोषों का वर्णन करेगा, उसकी सभी क्रियाएँ प्रेमयुक्त होंगी और वह दूसरों के गुणों को ग्रहण करने में सर्वदा तत्पर रहेगा। राजर्षि भर्तृहरि ने सन्त की अत्यन्त सुन्दर तथा सर्वांगीण व्याख्या की है, वे कहते हैं—

मनसि वचसि काये प्रेमपीयूषपूर्णा—स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।

परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।

अर्थात् जिनका मन प्रेम पीयूष से परिप्लावित हो, जिनकी वाणी प्रेममयी मधुमयी हो, जिनके शरीर के अङ्ग—प्रत्यङ्गों की चेष्टाओं से प्रेम प्रकट होता हो और जो अपने उपकारों की बाढ़ से त्रिभुवन को बहाते—से रहते हों तथा दूसरों के अणुमात्र गुण को पर्वत के समान बनाकर अपने हृदय में विकसित करते रहते हों ऐसे सन्त इस पृथ्वी पर कितने हैं? यदि सौभाग्य से ऐसे सन्त मिल जाएँ और ढूँढ़ने पर मिल ही जाते हैं, तो उनका सङ्ग निरन्तर करना चाहिये।

२. भगवत्कथाश्रवण—द्वितीय सोपान है भगवत्—कथा श्रवण का। इच्छापूर्वक, अनिच्छापूर्वक जैसे भी बने वैसे ही कथा सुननी चाहिये। भगवत्कथाश्रवण का व्यसन कर लेना चाहिये। अफीम जैसी कड़वी चीज को स्वाद से, स्वेच्छा से आरम्भ में कोई नहीं खाता। लेकिन खाते—खाते जब आदत पड़ जाती है, तब फिर उसके बिना रहा ही नहीं जाता। वैसे ही भगवत्कथा हमारे शरीर की खुराक बन जाए। यह कभी मत सोचो कि बिना मन के कथा सुनने से क्या लाभ होगा? स्कूल—कालेजों के अधिकांश छात्र बिना मन के ही पढ़ने जाते हैं। यदि उन्हें घरवालों का, फेल होने का और जुर्माने का भय न हो तो महीने में बहुत कम दिन ही वे अपनी इच्छा से पढ़ने जाएंगे। वहाँ जाने पर भी सबका मन शिक्षक की व्याख्या पर या पाठ पर ही लगा रहता हो ऐसा भी नहीं है। प्रायः सभी कानों से व्याख्यान सुनते हैं किन्तु मन से मित्र, सिनेमा, सभा और खेल—कूद इत्यादि की बातें सोचते रहते हैं। फिर भी वे पास हो जाते हैं और इसी बेमन के श्रवण से विभिन्न डिग्रियाँ भी प्राप्त कर लेते हैं। इसी बात को लक्ष्य करके भगवान् कपिल कह रहे हैं—

नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचिन् मत्पादसेवाभिरता मदीहाः ।

येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ।।

जिन्होंने सब कार्य मुझे ही अर्पण कर दिये हैं और जिन्हें केवल मुझे ही पाने की इच्छा है वे मुझसे एकात्म होने की अर्थात् मोक्ष की भी इच्छा नहीं करते, क्योंकि वे तो मेरे पाद—पदों की सेवा में संलग्न हैं। वे परस्पर बैठकर हठपूर्वक भी अर्थात् मन न लगता हो तो भी—एक—दूसरे को आपस में मेरे गुणों को सुनते और सुनाते रहते हैं।

भगवत्—कथाओं में सुनते—सुनते रस आने लगता है। जैसे छोटा बच्चा पहले बेमन से—माता के हठपूर्वक खिलाने पर ही अन्न खाता है; लेकिन खाते—खाते उसका अभ्यास हो जाता है। फिर रुचि भी बढ़ने लगती है और धीरे—धीरे उसे ऐसी आदत हो जाती है कि बिना अन्न खाये वह रह ही नहीं पाता। मन उद्विग्न होने लगता है। इसी प्रकार पहले पहल हठपूर्वक कथा सुनते—सुनते सुनने का अभ्यास होगा फिर रुचि भी बढ़ने लगेगी। अन्त में तो मन उसमें तल्लीन ही हो जाएगा। कथा सुने बिना मन मानेगा ही नहीं। यह दूसरा अंग है।

३. कीर्तन—तृतीय सोपान है भगवन्नाम कीर्तन। जैसे बने वैसे गाकर, रोककर, जोर—जोर से, धीरे—धीरे, सबके साथ मिलकर, अकेले में, बैठ कर, खड़े होकर, ताल—स्वर के साथ, बिना ताल के, गाकर अथवा साजों के ताल—स्वर के सहित भगवन्नामों का और भगवत्—गुणों का कीर्तन करते रहना चाहिये। वैसे तो कीर्तन सभी युगों में सर्वश्रेष्ठ साधन है, किन्तु कलियुग में तो कीर्तन के सिवा कोई गति ही नहीं। भगवान् व्यासदेव कहते हैं—

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ।

अर्थात् केवल श्रीकृष्णकीर्तन से ही मनुष्य इस घोर— कलिकाल में परमपद को प्राप्त कर सकता है। कीर्तन के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। शास्त्रों में इसकी अनन्त महिमा वर्णित है।

४. जप— ऋजुयोग का चतुर्थ सोपान है जप। जप वेदमन्त्रों का भी होता है तथा पौराणिक मन्त्रों का भी होता है। शास्त्रों में उनकी अनेक विधियाँ भी बताई गई हैं। विधिपूर्वक करने से उनका प्रत्यक्ष फल मिलता है। इसीलिये महादेव जी ने जोर देकर पार्वती जी से तीन बार कहा है—

जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्वरानने।

अर्थात् हे वरानने! मैं तीन बार प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, जप से सिद्धि होती है, होती है, होती है।

किन्तु वैदिक मन्त्रों के जप की विधि को द्विजेतर मनुष्य नहीं कर सकते। द्विजों में भी पढ़े—लिखे और संस्कृत का ज्ञान रखने वाले मनुष्य ही कर सकते हैं, किन्तु भगवन्नामजप में किसी प्रकार का कोई विशेष विधि—विधान नहीं। यह जप तो सब विधि—निषेधों से परे है। चाहे जो हो, स्त्री, शूद्र, अन्त्यज, चाण्डाल कोई भी हो, किसी भी अवस्था में हो, किसी भी देश में कहीं भी हो, हर समय नाम जप कर सकता है। और श्रद्धापूर्वक भगवन्नाम जप से वही फल मिल जाता है जो अन्य वैदिक मन्त्रों से मिलता है। इससे सरल कोई मार्ग हो ही नहीं सकता।

इस प्रकार ऋजुयोग के ये चार अङ्ग हैं। यदि आप राजयोग नहीं कर सकते, हठयोग के योग्य आपका शरीर नहीं है, यदि आप प्राणों को दसवें द्वार में ले जाकर समाधि नहीं लगा सकते, यदि आप भगवत्—विग्रह की षोडशोपचार—रीति से पूजा करने में भी असमर्थ हैं तो आप मन से, बेमन से, जैसे भी बने, भगवान के नामों का जप कीजिये। श्रीरामायण, भागवत् और पुराणों की कथा सुनिये, साधु पुरुषों का सङ्ग कीजिये और भगवन्नाम तथा उनके गुणों का कीर्तन कीजिये। आप सभी योगियों से आगे बढ़ जाएंगे, आप उस निर्वाण पद को भी पार कर जाएंगे। शास्त्रों में इसे ही ऋजुयोग, संक्षिप्तयोग, सरलयोग या मृदुयोग कहा गया है।

यह बात भी नहीं कि ये चारों अङ्ग हों ही और बिना चारों के किए सिद्धि लाभ होता ही नहीं हो। ये चारों स्वतन्त्र भी हैं। केवल कथा ही श्रवण करते रहें और अन्य कुछ भी ना करें, निरन्तर भगवल्लीलाओं का श्रवण और उनका मनन करते रहें तो भी आप परमपद को प्राप्त कर लेंगे। और किसी भी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं। महाराज परीक्षित इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। केवलमात्र कथाश्रवण से ही वे सर्वसंगविनिर्मुक्त हो गये।

केवलमात्र सत्सङ्ग ही करते रहें, साधु पुरुषों की सेवा करें, उनके वचनमृतों को सुनें, उनकी सब प्रकार से सेवा—शुश्रूषा करें, आपको परमयोगियों से भी ऊँची पदवी प्राप्त हो जाएगी। बहुत—से यातुधान, खग, मृग, स्त्री, शूद्र केवलमात्र सत्सङ्ग के सहारे ही इस संसाररूपी घोर सागर से आसानी से तर गये। केवल सत्सङ्ग ही सभी साधनों का फल दे देता है।

‘सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।’

केवलमात्र कीर्तन को ही अपने जीवन का एकमात्र साधन बना लिया जाए। उठते—बैठते सर्वदा हरिकीर्तन करते रहें तो उसी से प्रभुप्राप्ति हो जाएगी, इसमें सन्देह करना भी घोर पाप है। नारदादि इसके साक्षी हैं।

इसी प्रकार केवलमात्र जप से ही परम समाधि लगती है और सिद्धि प्राप्त होती है। भगवान मनु जप का माहात्म्य बतलाते हुए कहते हैं—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैरु।

उपांशुरु स्याच्छतगुणरु साहस्रो मानसरु स्मृतरु।

वाल्मीकि जी तो उलटा नाम जपकर ही सिद्ध हो गये। इसलिये ये चारों मिला लिये जाएं तब तो एक हैं, और अलग कर दिये जाएं तो स्वतन्त्र हैं, इसीलिये निम्न श्लोक में ‘ऋजुभिर्योगमार्गैरु’ ऐसा बहुवचन है—

भक्त्या पुमाञ्जातविराग ऐन्द्रियाद् दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिन्तया।

चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः॥

अर्थात् भगवत्—कथा—श्रवणसे मनुष्य में भक्ति उत्पन्न होती है, भक्ति हो जाने पर देखे हुए और स्वर्गादि सुने हुए जितने इन्द्रियजन्य सुख हैं, उनमें वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। ऐसा योगयुक्त पुरुष आत्मसाधन के उद्योग में तत्पर होकर ऋजु—योग—मार्गों से प्रभु—प्राप्ति के लिये यत्न करता रहता है।

इस प्रकार ये चारों ही ऋजुयोग हैं। चारों ही स्वतन्त्र भी हैं और एक भी हैं। हम सर्वसाधारण की किसी एक ही साधन में निष्ठा होनी कठिन है, अतः हमारे लिये सही यही है कि कुछ समय जप करें, कुछ समय कीर्तन

करें और कुछ समय सत्सङ्ग में बैठकर भगवत्कथा श्रवण करें। जो लोग इस ऋजुयोग का आचरण करेंगे, वे निश्चय ही सभी संसारी तापों से छूट जाएंगे तथा इस संसार-सागर को सुगमता से पार कर जाएंगे।

निष्कर्ष—

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा मानव जीवन के सर्वांगीण विकास की एक समृद्ध एवं वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करती है। इस परम्परा में योग को केवल शारीरिक साधना न मानकर, मानसिक शुद्धि, नैतिक अनुशासन और आत्मिक उन्नति का माध्यम स्वीकार किया गया है। योग के माध्यम से व्यक्ति आत्मबोध की ओर अग्रसर होकर संतुलित एवं सार्थक जीवन जी सकता है।

ऋजुयोग भारतीय ज्ञान परम्परा की उसी मूल भावना को सरल, सहज और व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करता है। यह योग पद्धति जटिल साधनाओं के स्थान पर सत्य, सरलता, संयम और सकारात्मक चिंतन जैसे मूल्यों पर आधारित है, जिससे सामान्य व्यक्ति भी इसे अपने दैनिक जीवन में आसानी से अपना सकता है। आधुनिक जीवन की भागदौड़, तनाव और नैतिक विचलन के संदर्भ में ऋजुयोग मानसिक शांति, आत्मनियंत्रण और सामाजिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि ऋजुयोग न केवल भारतीय ज्ञान परम्परा का आधुनिक स्वरूप है, बल्कि यह वर्तमान समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप एक प्रभावी जीवन-दर्शन भी प्रस्तुत करता है। भविष्य में इस विषय पर और गहन शोध भारतीय ज्ञान परम्परा को वैश्विक संदर्भ में और अधिक सुदृढ़ कर सकता है।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

संदर्भ—

1. पतंजलि, योगसूत्र, व्यास भाष्य सहित, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. दयानंद सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सत्यार्थ प्रकाशन, दिल्ली।
3. राधाकृष्णन, एस., भारतीय दर्शन, खण्ड-1, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली।
4. शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
5. विवेकानन्द, स्वामी, योग पर प्रवचन, रामकृष्ण मिशन, कोलकाता।
6. तैलंग, काशीनाथ, भगवद्गीता (गीता रहस्य सहित), गीता प्रेस, गोरखपुर।
7. सिंह, राममूर्ति, भारतीय संस्कृति और योग, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयागराज।

Cite this Article

"डॉ. प्रमिता मिश्रा", "भारतीय ज्ञान परम्परा और योग: ऋजुयोग के विशेष सन्दर्भ में", ResearchPro International Multidisciplinary Journal (RPIMJ), ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:1, Issue:2, October-December 2025.

Journal URL- <https://www.researchprojournal.com/>

DOI- 10.70650/rpimj.2025v1i200007